चारुदत्तम् (प्रथमोऽङ्कः)

1. घृतगुडदधिसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसम्भिन्नम् ।
सत्कारदत्तमिष्टं भुज्यतां भक्तमार्येण ॥
घी, गुड, एवं दधि से सुसंस्कृत, सुगन्धित द्रव्य से सुवासित, व्यंजन और कन्दमूलादि पदार्थ से मिश्रित, सत्कारपूर्वक दिया हुआ तथा मनोरम 'पक्वान्न' का आर्य उपभोग करें।

2. यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥
हमारे गृह की जिन देहलियों पर बलि पड़ी रहा करती थी और जिसे हंस तथा सारस खाया करते थे। आज उसी देहली पर जहाँ पहले के बलि कर्म में क्षिप्त यव के अङ्कुर निकल आए हैं, इन कीटों के द्वारा खण्डित बीजाञ्जलि पड़ी हुई है।

3. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति ॥

91 — अनुवाद

दुःख की अनुभूति के बाद ही सुख अच्छा लगता है। जैसे अन्धकार में दीप का प्रकाश रुचिकर प्रतीत होता है। जो सुखावस्था से दुःख की दशा को प्राप्त करता है वह तो शरीर धारण करके भी मृतप्राय होकर जीवन धारण करता है।

4. क्षीणा ममार्थाः प्रणयक्रियासु
विमानितं नैव परं स्मरामि ।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं
सत्त्वं सखे। न क्षयमभ्युपैति ॥
मेरी सम्पत्ति प्रेमीजन के कार्यों की पूर्ति करने में ही नष्ट हुई है। परन्तु अन्य किसी भी याचक को असंतुष्ट नहीं किया। हे मित्र! दान देना उत्तम कार्य है। उसी विश्वास से सम्पूर्ण सम्पत्ति व एवं ऐश्वर्य को लुटा देने वाला सत्त्वशाली मेरा मन कभी भी क्षय भाव को नहीं प्राप्त होता।

5. सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।
एतत्तु मां दहति नष्टधनश्रियो मे
यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति ॥

90 — अनुवाद

हे मित्र ! यह सच है कि मुझे धन के नाश की विशेष चिन्ता नहीं है क्योंकि भाग्य के क्रम से धन पुनः हो जाते हैं। परन्तु यही तो मुझे विशेष कष्ट देता है कि निर्धन होने पर मेरे जैसे सुजन व्यक्ति से मेरे बन्धुओं का प्रेम अब मेरे प्रति कम हो गया है।

6 दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते॥

दरिद्रता के कारण, पुरुष का कुटुम्ब या बन्धुवर्ग वाणी में आस्था नहीं रखता, मनस्विता हास्य का विषय बन जाती है, शीलयुक्त (पुरुष) की कान्ति भी मलिन हो जाती है। वैरहीन मित्र भी विमुख हो जाते हैं तथा आपत्तियाँ बढ़ जाती हैं। जो पापकर्म अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता है उसे भी लोग दरिद्रता के कारण उसी का किया हुआ है, ऐसी संभावना करते हैं।

7. विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान्।
सत्त्वं न च परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम्॥

~~जिसके~~ ~~पास~~ विपुल विभव के कारण ~~अनुकूल~~ सर्वदा पास रहने वाली स्त्री, सुख-दुःख में जैसे सहृदय बन्धु समान रूप से रहने वाले आप (मित्र) हैं और सत्त्वशाली मन भी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है जबकि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ हैं।

8. किं यासि धावसि प्रधावसि प्रस्खलन्ती
साधु प्रसीद न मार्यसे तिष्ठ तावत्।
कामेन सम्प्रति हि दह्यते मे शरीर-
मङ्गारमध्यपतितमिव चर्मखण्डम्॥

क्यों जा रही हो? क्यों दौड़ रही हो? नीचे-ऊँचे मार्ग में लड़खड़ाती हुई भी अत्यन्त वेग से क्यों दौड़ रही हो? मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। ठहरो, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। इस समय मेरा शरीर जलती हुई आग में गिरते हुए चमड़े के टुकड़े की तरह काम-वेदना से पीड़ित हो रहा है। (इस समय मेरा शरीर आग में पड़े हुए चर्मखण्ड की भाँति कामरूपी अग्नि से जल रहा है)

12. किं वासुदेवः शतपत्रनेत्रः कुन्तीसुतो वा जनमेजयो वा।

8) अर्थेषु कृतमुपलभ्य मनोरथो मे
स्त्रीणां धनेष्वनुचितं प्रणयं करोति।
माने च कार्यकरणे च विलम्बमानो
धिग् भोः कुलं च पुरुषस्य दरिद्रतां च॥
धन के विषय में मेरा मनोरथ अत्यन्त तृप्ति को पाकर इस समय स्वकीय। मानरक्षा करने में और कर्तव्य (न्यास-प्रत्यर्पण रूप) कार्य को करने में विलम्ब होता हुआ देखकर स्त्रियों के धन में अनुचित अनुराग दिखा रहा है। अतः इस मर्यादा से बढ़ उच्चकुल तथा दरिद्रता (दोनों) को धिक्कार हो।

9) यं समालक्ष्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु कृतस्त्वया।
तस्यैन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्य प्रदीयताम्॥
जिस विश्वास के ऊपर उस (वसन्तसेना) ने मेरे पास धरोहर रखी, उस महान् विश्वास का मूल्यस्वरूप यह मुद्रावली तुम उसे दे दो।